Department of Philosophy
D. B. COLLEGE, JAYNAGAR, MADHUBANI (BIHAR)
(A Constituent unit of L. N. Mithila University K. Nagar, Darbhanga)
By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 1, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619

Class :- B.A. PART I (H & SUBSI.)

Topic :- जैन दर्शन की जीव संबंधी विचार

स्यादवाद की विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुओं के अनेक गुण होते है। कुछ गुण शाश्वत अर्थात स्थाई हैं, तो कुछ गुण और अशाश्वत अर्थात् अस्थाई हैं। स्थाई गुण वे हैं, जो वस्तुओं में निरंतर विद्यमान रहते हैं। अस्थाई गुण वे हैं जो निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं। स्थाई गुण वस्तु के स्वरूप को निर्धारित करते हैं, इसीलिए उन्हें आवश्यक गुण भी कहा जाता है। अस्थाई गुण के अभाव में भी वस्तु की कल्पना की जा सकती है इसीलिए उन्हें अनावश्यक गुण भी कहा जाता है। मनुष्य का आवश्यक गुण चेतना है। सुख–दुख, कल्पना आदि मनुष्य के अनावश्यक गुण हैं। इन गुणों का कुछ ना कुछ आधार होता है। उस आधार को ही द्रव्य कहा जाता है। जैन आवश्यक गुणों को जो वस्तु के स्वरूप को निर्धारित करता है गुण कहते हैं, तथा अनावश्यक गुण को पर्याय कहते हैं। इस प्रकार द्रव्य की परिभाषा यह कह कर दी गई है– **"गुण पर्यायवद् द्रव्यम्"**। अर्थात् जिसमें गुण और पर्याय हो वही द्रव्य है। जैन दर्शन के द्रव्य की यह व्याख्या द्रव्य के साधारण व्याख्या का विरोध करती है। साधारण व्याख्या के अनुसार आवश्यक गुणों के आधार को द्रव्य कहा जाता है। परंतु जैनों ने आवश्यक और अनावश्यक दोनों गुणों के आधार को द्रव्य कहा है। अतः जैन दर्शन के द्रव्य संबंधी विचार अनूठे हैं। इस विशिष्टता का कारण यह है कि जैनों ने नित्य और अनित्य दोनों को सत्य माना है। वेदांत का मत है कि ब्रह्म नित्य है, बुध का मत है कि संसार अनित्य है, दोनों ही एकांगी मत है।

जैनों के मतानुसार द्रव्य का विभाजन दो वर्गों में हुआ है– अस्तिकाय और अनस्तिकाय। काल ही एक ऐसा धर्म है जिसमें विस्तार नहीं है। काल के अतिरिक्त सभी द्रव्य को अतिकाय कहा जाता है क्योंकि वे स्थान घेरते हैं। अतिकाय द्रव्य का विभाजन जीव और अजीव में होता है। जैनों के जीव संबंधी विचार की चर्चा प्रकार और स्वरूप का विचार करेंगे।

जैन दर्शन की जीव के विषय में सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि वह पार्थिव खनिज पदार्थों एवं जल, तेज और वायु में भी जीव का अस्तित्व स्वीकार करता है। इतना ही नहीं उसकी मान्यता के अनुसार इनके खंडों में भी जीव हैं जिन्हें हम पृथ्वी जीव और जल जीव आदि कहते हैं। इनके भी स्थूल सूक्ष्म शरीर हैं तथा यह भी उत्पन्न और नष्ट होते हैं।

मुक्त या केवली जीव तो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। इसके अतिरिक्त वे सभी जीवों में अपने ज्ञान के आधार पर भी श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार नरक वासी तथा स्वर्गवासी देव अधिक चेतना संपन्न जीव माने गए हैं, क्योंकि उनमें मनस् नामक एक अंतरिन्द्रिय भी मानी गई है। इसी आधार पर वे अधिक विवेकशील कहे गए हैं। जैन दर्शन इन्हें संज्ञी कहता है। अन्य जीव इसकी तुलना में तुच्छ हैं, क्योंकि उनमें विवेक नहीं होता है। अतः वे और असंज्ञी हैं।

By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 1, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619

अस्तिकाय के दूसरे भेद अजीव में चार द्रव्यों की गणना की जाती है– धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल। इनमें से पुद्गल के दो भेद हैं– अणु और संघात।

जीव का स्वरूप

जिस सत्ता को अन्य भारतीय दर्शनों में साधारणतया आत्मा कहा गया है उसी को जैन दर्शन में 'जीव' की संज्ञा दी गयी है। वस्तुतः जीव और आत्मा एक ही सत्ता के दो भिन्न–भिन्न नाम है। जैनो के मतानुसार चेतन द्रव्य को जीव कहा जाता है। चैतन्य जीव का मूल लक्षण है। यह जीव में सदा विद्यमान रहता है। चैतन्य के अभाव में जीव की कल्पना करना भी संभव नहीं है। इसलिए जीव की परिभाषा इन शब्दों में दी गयी है– **'चेतना–लक्षणों जीवः'**

जैनों का जीव संबंधी यह विचार न्याय–वैशेषिक के आत्म विचार से भिन्न है। न्याय–वैशेषिक ने चैतन्य को आत्मा का आगन्तुक लक्षण माना है। आत्मा उनके अनुसार स्वभावतः अचेतन है।

परंतु जैन दर्शन के अनुसार

1. जीव का प्रमुख गुण चेतना माना गया है। यह चेतना जीव में सदा विद्यमान रहती है। प्रत्यभिज्ञा आदि के आधार पर हम जीव की सत्ता का प्रत्यक्ष अनुभूति करते हैं।
2. जीव या आत्मा का शुद्ध स्वरूप अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान और अनंत सुख अनंत तथा अनंत वीर्य शाली है। परंतु सांसारिक अवस्था में उसका यह स्वरूप कर्म के झीने आवरण से अच्छादित रहता है। यह कर्म आवरण अनादिकाल से निर्मित होकर निरंतर गाढ़ा होता रहता है। इसलिए इसका ज्ञान सीमित हो रहता है और वह अल्पज्ञ कहलाता है। कर्म के बंधन को नष्ट करके जब वह निग्रंथ अर्थात बंधन रहित होकर सर्वथा मुक्त हो जाता है तो वह अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाता है। इसलिए केवली या मुक्त लोग सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान कहे जाते हैं अथवा माने गए हैं।
3. जीव एक शाश्वत द्रव्य है। जीव भौतिक सृष्टि में आनंत देशों में व्यापक होने के कारण बहुसंख्यक है। इनका परिणाम मध्यम है। अर्थात यह न तो विभु अर्थात व्यापक ही हैं और ना ही अणु हैं। इन दोनों के बीच का परिणाम इन्हें प्राप्त है। इसलिए इनकी गणना अतिकाय द्रव्यों के अंतर्गत होती है।
4. ये जीव जिस शरीर में प्रवेश करते हैं उसी के परिमाण के अनुसार अपने को संकुचित या विस्तृत कर लेते हैं। परिस्थिति के अनुसार यह परिणामी हैं।
5. ये निरवयव द्रव्य नहीं अपितु सावयव द्रव्य है। शरीर के सर्वत्र केशों और नाखूनों में भी आत्मा की सत्ता विद्यमान रहती है, क्योंकि शरीर में कहीं भी पीड़ा होने पर उसकी अनुभूति सर्वत्र होती है।
6. आत्मा की व्याप्ति आलोक के समान है। यह सच है कि एक पेड़ में दूसरा पेड़ नहीं सकता, किंतु जिस प्रकार एक भवन में दो दीपों का आलोक प्रवेश पा सकता है, उसी प्रकार एक शरीर में दो जीवों का प्रवेश हो सकता है। स्पष्ट है कि जैन दर्शन के अनुसार शरीर में आत्मा की सत्ता आलोक के समान व्यापक होती है।

Department of Philosophy
D. B. COLLEGE, JAYNAGAR, MADHUBANI (BIHAR)
(A Constituent unit of L. N. Mithila University K. Nagar, Darbhanga)
By:- Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
August 1, 2020
kumar999sonu@gmail.com
8210837290, 8271817619

जीव की सत्ता के प्रमाण

जैन दर्शन के अनुसार जीव की सत्ता प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाण से सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए आत्मा के सुख और दुख आदि धर्मों की जो अनुभूति हुआ करती है वह आत्मा का प्रत्यक्ष ही तो है। इस प्रत्यक्ष को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष कहा जाता है। धर्म के अनुभव से ही धर्मी का प्रत्यक्ष होता है। वस्तुतः संसार में आत्मा के सुख–दुख स्मृति और संकल्प आदि धर्मों का प्रत्यक्ष यही आत्मा या जीव का प्रत्यक्ष है।

अनुमान के द्वारा भी जीव की सिद्धि होती है, क्योंकि शरीर की क्रियाएं और चिंताएं उसके संचालन और नियंत्रण ये सभी उसके किसी परिचालक का अनुमान कराते हैं। शरीरस्थ इंद्रियां हमारे ज्ञान का के साधन मात्र हैं। प्रायोजक या प्रेरक ना होने के कारण साधक स्वयं कार्य का संपादन नहीं कर सकते। इसलिए ज्ञाता चौतन्य आत्मा है।

निमित्त कारण के आधार पर भी जीव की सिद्धि होती है। जिस प्रकार संसार–प्रसिद्ध कार्यों की उत्पत्ति में उपादान के अतिरिक्त निमित्त कारण की सत्ता भी आवश्यक है। उसके बिना कोई कार्य संपन्न नहीं हो सकता इसी आधार पर शरीर की उत्पत्ति के लिए भी भौतिक उपादान के अतिरिक्त एक कारण की आवश्यकता मानना अनिवार्य है और यह निमित्त कारण आत्मा है।

Dr. Kumar Sonu Shankar
Assistant Professor (Guest)
Department of Philosophy
Mobile 8210837290
Whatsapp 8271817619
E-mail Id – kumar999sonu@gmail.com